ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 219-221
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

"पालि बौद्ध साहित्य में नारी"

रवि प्रकाश पीयूष

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0) भारत

Received- 02 .12. 2021, Revised- 07 .12. 2021, Accepted - 11.12.2021 E-mail: aaryavrat2013@gmail-com

सारांश: ***बौद्ध कालीन समाज में नारी की स्थिति परम्परागत समाज से बहुत भिन्न नहीं थी। यद्यपि बुद्ध ने नारियों को पुरुषगत धार्मिक साधना का अधिकार देकर उनकी स्थिति को संवारने का प्रयास किया तथापि उनकी सामाजिक स्थिति पूर्ववत बनी रही।***

पूर्व समाजों की तरह इस युग में भी कन्या की अपेक्षा बालक के जन्म को वरेण्य माना गया था फिर भी परिवार में पुत्री का जन्म अब वैसा अशुभ सूचक न था जितना कि ब्राह्मण व्यवस्था में। इसीलिए कभी–कभी बौद्ध साहित्य में हम पुत्र तथा पुत्री को समान स्तर पर देखते हैं महासुवर्ण नामक एक गृहस्थ एक वृक्ष से प्रार्थना करता है कि मुझे पुत्र अथवा पुत्री प्राप्त हो तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। संयुक्त निकाय में बुद्ध का कथन है कि कभी–कभी पुत्री, पुत्र की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होती है। परिवार में लड़कियों का जन्म हेय नहीं माना जाता था। कन्या के उत्पन्न होने पर भी आनन्द के साथ सम्पूर्ण संस्कार किए जाते थे। तत्कालीन समाज में स्त्रियों का पारिवारिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। वे परिवार में रहकर पशुओं का भरण–पोषण पुत्रवत् करती थीं। आये हुए अतिथियों का स्वागत नारियाँ ही करती थीं और उनके पैर भी धोती थीं।

कुंजीभूत शब्द– परम्परागत समाज, पुरुषगत धार्मिक साधना, सामाजिक स्थिति, अशुभ सूचक, ब्राह्मण व्यवस्था।

स्त्री का गृहिणी के रूप में मुख्य स्थान था। पहले की तरह वह पति के अधीन थी और उसे अपने पति की इच्छाओं तथा निर्णयों का अनुपालन करना पड़ता था। पालिपिटक के अनुसार एक व्यक्ति ने अपनी व्यभिचारिणी पत्नी की हत्या करने की इच्छा लिच्छविगण के समक्ष व्यक्त की। इस पर लिच्छवि गण ने इसके निर्णय का अधिकार उस व्यक्ति पर छोड़ दिया। एक अन्य सन्दर्भ में एक व्यक्ति को उन बौद्ध भिक्षुणियों को अपने घर से निश्कासित करते हुए दर्षाया गया है जिन्हें उसकी पत्नी ने शरण दे रखी थी। इससे स्पष्ट है कि पत्नी की अपेक्षा पति की इच्छा सर्वोपरि थी। पति की सेवा करना पत्नी का मुख्य कर्तव्य था।

पालि पिटक में दस प्रकार की स्त्रियों के उल्लेख है – मातुरक्खिता (माता के द्वारा रक्षित), पितुरक्खिता (पिता द्वारा रचित), मातापितुरविखता (माता और पिता द्वारा रक्षित), भातुरम्खिता (भ्राता द्वारा रक्षित) भगिनिरक्खिता (बहन द्वारा रक्षित) आदि। बुद्ध ने पुरुष की सात प्रकार की भार्या का उल्लेख किया है – बन्धक भार्या, चार भार्या, आर्या भार्या, माता भार्या, संगिनी भार्या, सखी भार्या और दासी भार्या। संघ में नारियों के प्रवेश के सम्बन्ध में बुद्ध को संकोच था क्योंकि उन्हें शंका थी कि संघ में विकारोत्पत्ति हो सकती है। इसीलिए उन्होंने निश्चित नियमन के तहत उनके प्रवेश की अनुमति प्रदान की। इससे प्रतीत होता है कि वे नारियों को उपेक्षित दृष्टि से हीन मानते थे और उन्हें आशंका थी कि उनके स्वच्छन्द आचरण के कारण संघ में अवांछित दोष उत्पन्न हो सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि बुद्ध स्त्रियों के गृहिणी रूप को ही आदर्श मानते थे।

पालि साहित्य में नारियों की शिक्षा के बारे में अनेक सन्दर्भ अंकित है। स्त्रियों के विदुषी एवं कवयित्री होने के प्रमाण वैदिक काल से ही प्राप्त होते हैं, किन्तु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की शिक्षा की स्थिति दयनीय हो गयी थी। थेरीगाथा में अनेक तेजस्वी, शास्त्रार्थ में निपुण, गीत रचना में प्रवीण विदुषी स्त्रियों के उल्लेख मिलते है।

बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि नारियों की शिक्षा–दीक्षा माता–पिता के संरक्षण में ही हुआ करती थी। थेरीगाथा में ऋषिदासी नामक भिक्षुणी का उद्गार इस प्रकार है –

"मेरे पिता ने मेरा विवाह कर दिया.... अपने घर में प्राप्त शिक्षा के अनुसार मैं प्रतिदिन सायंकाल और प्रातः काल सास–श्वसूर को प्रमाण करती। नत मस्तक होकर उनकी चरण वन्दना करती।। मेरा पति मेरा अपमान करने लगा..... एतद्नन्तर मेरे पिता ने एक अन्य कुल वाले धनाढ्य पुरुष से मेरा विवाह कर दिया।"

इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को घर में शिक्षा दी जाती थी। कन्या की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही होता था। पाठशालाओं में उनके द्वारा विद्या अर्जित करने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। पिता, भ्रता तथा विवाहोपरान्त पति अथवा सास–श्वसुर से वे ज्ञान प्राप्त करती थीं। धनी परिवारों में नियुक्त कुशल धात्रियों से भी इन्हें ज्ञान प्राप्त होता था। स्त्रियाँ भी अध्यापन कार्य करती थी। अध्यायपन कार्य करने वाली स्त्रियों को 'उपाध्याय' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। ये उपाध्याया ही नहीं "आचार्या" भी होती थी। जिन्हें माणवकों के उपनयन सम्पादित करने का भी अधिकार था। स्त्रियों के लिए

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

ज्ञानार्जन का एक अन्य साधन घर पर आये विद्वान अतिथियों के उपदेष थे। भिक्षुणियाँ भी उपदेष देती थी। भिक्षुणियों को पण्डिता, मेधाविनी, चतुर, प्रतिभावान तथा अच्छी सूझ–बूझ वाली कहा गया है।

तत्कालीन समाज में स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। संयुक्त निकाय के एक सुत्त प्रद्युम्न की बेटी कोकनदा के द्वारा बुद्ध के सम्मुख कही गयी एक धार्मिक गाथा का उल्लेख है इससे यह संकेत मिलता है कि स्त्रियाँ धार्मिक विषयों के प्रति जिज्ञासा का भाव रखती थी। तत्कालीन समाज में धार्मिक दृष्टि से नारियों को पुरुषों के समकक्ष ही माना जाता था। समाज में विवाह की महत्ता अति प्राचीन काल से स्वीकृत थी। वह मनुष्य के व्यक्तित्व तथा सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। पुरुष के बिना स्त्री, स्त्री के बिना पुरुष के व्यक्तित्व को एकांगी तथा अपूर्ण स्वीकार किया गया है। बौद्ध ग्रंथों में पुरुष की अपेक्षा नारी के लिए विवाह की अनविर्याता पर अधिक बल दिया गया है। ऋग्वैदिक समाज में गृहस्थ जीवन यापन यज्ञ सम्पादन तथा प्रजोत्पादन के लिए विवाह अनिवार्य माना गया था। शतपथ ब्राह्मण में नारी का वर्णन पुरुष की अर्धागिणी के रूप में करते हुए कहा गया है कि जब तक पुरुष विवाहित नहीं हो जाता, तब तक वह वस्तुतः अपूर्ण रहता है। पालि बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि अविवाहित स्त्रियाँ समाज में अनादर और अश्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थी। अंगुत्तर निकाय के एक सन्दर्भ के अनुसार पुरुष नारी का आच्छादन, आश्रय और वही उसका अलंकरण है।[9] एक जातक कथा के अनुसार नारी के शरीर का वास्तविक आच्छादन तो उसका पति ही है जिसके अभाव में बहुमूल्य वस्त्र धारण करने पर भी वह अपने को निर्वस्त्र ही समझे।[10] पति के द्वारा पत्नी का पाणिग्रहण किए जाने पर विवाह संस्कार सम्पन्न समझा जाता था। पालि पिटक में विवाह के लिए दो शब्द 'आवाह' एवं 'विवाह' के उल्लेख प्राप्त होते हैं। वर के घर में 'वधू' का आगमन 'भावाह' एवं कन्या का पाणिग्रहण द्वारा दान देने 'विवाह' कहा जाता था।[11] विवाह के उम्र की बात में सोलह वर्ष की युवतीयाँ विवाह योग्य मानी जाती थी। अंगुत्तर निकाय में नारी के लिए अल्प आयु में विवाह को पांच महादुःखों में से एक दुःख माना गया है। बुद्ध युगीन समाज में बेमेल विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। सुत्त निपात और जातकों में वृद्ध विवाह के कई उल्लेख मिलते है। फिक के अनुसार बौद्ध युगीन समाज में प्रायः लोग अपनी ही जाति में विवाह सम्बन्ध स्थापित करते थे।[12] पालि साहित्य में पति–पत्नी द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह–विच्छेद कर पुनर्विवाह करने के कुछ सन्दर्भ मिलते हैं। एक स्त्री के निकट सम्बन्धियों ने उसका विवाह अन्य पुरुष से करने का निश्चय किया। वह भी अपने पति को नहीं चाहती थी।[13] विवाह–विच्छेद तथा पुनर्विवाह का प्रचलन समाज के निम्न वर्ग में अपेक्षाकृत अधिक था।

बुद्ध कालीन समाज में आर्थिक दृश्टि से स्त्रियाँ पूर्णतः पराश्रित नहीं थी, पारिवारिक अर्थव्यवस्था के निर्माण में उनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। बौद्ध साहित्य में स्त्रियों द्वारा कताई–बुनाई से सम्बन्धित कार्यों के करने के अनेक सन्दर्भ अंकित हुए हैं। कभी–कभी इन कार्यों द्वारा वे पति की मृत्यु के बाद जीविकोपार्जन का कार्य भी करती थी।[14] अंगुत्तर निकाय में एक स्त्री अपने को रूई धुनने व सूत कातने में निपुण तथा परिवार को पालन–पोषण हेतु स्वयं को समर्थ बताती है। कहीं–कहीं स्त्रियों द्वारा खेतों में बुआई का कार्य करने का सन्दर्भ दिया गया है। स्त्रियों को सभा में बैठने की अनुमति नहीं थी।[15] बहुत सी स्त्रियाँ नृत्य करती, मधुषालाएं चलाती, पशु–वधशालाएँ चलाती, फूलों बीजों आदि के व्यापार के साथ नापित का भी कार्य करती थी। दासियों के रूप में कार्य कर वे जीविका चलाती थी।[16]

नारियों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर समाज में उनका सम्पत्ति विषयक अधिकार स्वीाकर किया गया। उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया, जिनके कारण सम्पत्ति में वे अपना हिस्सा प्राप्त कर सकती थी। वैदिक काल में कुछ ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं जो उनके उत्तराधिकार पर आक्षेप करते हैं। किन्तु ये अपवाद स्वरूप प्रतीत होते हैं। पुत्री दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ ही समझी जाती थी। सम्पत्ति के क्षेत्र में साधारणतः पिता की सम्पत्ति का अधिकार पुत्र ही होता था। उसके रहते हुए पुत्री को सम्पत्ति पाने का अधिकार नहीं था। भाई के न रहने पर वह पिता के सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती थी। बुद्ध युगीन समाज में विधवा नारी की स्थिति पूर्व की भांति दयनीय नहीं थी। पालि बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि विधवा स्त्री साध्वी की तरह वस्त्र पहनती थी। उदाहरणर्थ जब प्रजापति गौतमी बुद्ध से पहली बार मिली तो विधवा थीं किन्तु उन्होंने न तो अपने केश कटवाएं थे और न ही विशेष प्रकार के वस्त्र धारण किए थे। इसी प्रकार रट्ठपाल की स्त्रियाँ अलंकारों का प्रयोग करती हुई अंकित है विधवा स्त्रियों के तीन प्रकार से जीवन व्यतीत करने का उल्लेख मिलता है पति की सम्पत्ति से जाति कुल के संरक्षण में तथा पुनर्विवाह करके। साधारणतः विधवा हो जाने पर स्त्री अपने माता–पिता के घर लौट जाती थी। वे उसका पुनर्विवाह कर देते थे।[18]

बौद्ध साहित्य में नारी की दासी के रूप में आठ प्रकार के दास–दासियों का सन्दर्भ मिलता है जो निम्न हैं ध्वजाहता, स्वेच्छया दासी, दान की गई दासी, धन से क्रय की गई दासी, कुल दासी, कुम्भ दासी, संदेशवाहिका दासी, भयप्पुण्ण दासी। चूंकि नागर संस्कृति का अभ्युदय बुद्ध कालीन भारत की एक प्रमुख विशेषता है उसमें कई समृद्ध नगर भी थे इन नगरों में

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

निवास करने वाले विलासप्रिय नागरिकों को अमोद–प्रमोद की सभी सुख सुविधाएं उपलब्ध थी जिसमें गणिकाओं का प्रमुख स्थान था। उदाहरणार्थ वैशाली नगर की गणिका अम्रपाली, राजगृह की सालवती।

तत्कालीन समाज में अनेक स्त्रियाँ सामाजिक जीवन से त्रस्त होकर धर्म की ओर अग्रसर हुई। विनयपिटक के अनुसार बुद्ध स्त्रियों को प्रव्रज्या देने के पक्ष में नहीं थे। महाप्रजापति गौतमी और आनन्द के आग्रह पर उन्होंने वैशाली में भिक्षुणी संघ की स्थापना की अनुमति दी। इसके पश्चात् समृद्ध परिवारों की स्त्रियों ने एवं निर्धन एवं विपन्न परिवारों की स्त्रियों ने प्रव्रज्या ली। ऐसे स्त्रियों कम न थी जो व्यक्तिगत निरस्सारता के कारण गृहस्थ जीवन का त्याग किया।[19] संयुक्त निश्चय से ज्ञात होता है कि स्वयं बुद्ध ने उनकी निर्वाण प्राप्ति की योग्यता को स्वीकार किया था और कुछ नारियों को वे पुरुषों से भी योग्य मानते थे।[20]

पालि साहित्य में उपलब्ध इन सन्दर्भों से स्पष्ट है कि समकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका थी जो पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. धम्मपद–सम्पादक, एम0एस0 थेर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1833, नालंदा देवनागरी संस्करण, श्लोक 1.
2. संयुक्त निकाय – सम्पादक, लियोन फ्रियर और श्रीमती रीज डेविट्स पालि टेक्स्ट सोसायटी लंदन, 1884–1904, पृ0 3/3/6.
3. माकन्दिकावदान, पृ0 446.
4. पाचित्तिय–भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित पालि पब्लिकेशन, बोर्ड, 1958, पृ0 103.
5. पाराजिक, पृ0 200–201.
6. अंगुत्तर निकाय, नालन्दा देवनागरी संस्करण, सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप, 1958.
7. संयुक्त निकाय–1, पृ0 2/3, सत्यकेतु विद्यालंकार प्राचीन भारत का धार्मिक जीवन, सामाजिक एवं आर्थिक प्रकाशक श्री सरस्वती सदन, (मसूरी)।
8. थेरीगाथा–सम्पादक, आर0 विशेल, पालि टेक्स्ट सोसाइटी लन्दन, 1889, नालन्दा देवनागरी, संस्करण, 1959.
9. अंगुत्तर निकाय–4, पृ0 57.
10. जतक–अट्ठकथा–पठमों भागों, भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित, काशी, 1951, पृ0 307.
11. सुत्त निपात, हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्मरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1951.
12. रिचर्ड फिक, सोशल आर्गेनाइजेसान इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, पृ0 150.
13. मज्झिम निकाय – सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1933.
14. अंगुत्तर निकाय, नालन्दा देवनागरी संस्करण, सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप, 1958, भाग–3, पृ0 37, भाग–4, पृ0 262.
15. अंगुत्तर निकाय, भाग–2, पृ0 83.
16. विनयपिटक, भाग–1, पृ0 217, 269, 291, मज्झिम निकाय भाग–1, पृ0 125.
17. जैन, कोमल चन्द्र, बौद्ध और जैन आगमों में नीर जीवन, समिति, अमृतसर, पृ0 124, सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक।
18. मज्झिम निकाय, भाग–2, पृ0 109, रीज डेविड्स सिस्टर्स, भूमिका, पृ0 24, 27.
19. संयुक्त निकाय – सम्पादक लियोन फ्रियर और श्रीमती रीज डेविड्स, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1884, (मल्लिका सुत्त), 3/16.

*****